International Journal of Sanskrit Research 2023; 9(2): 22-24

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2023; 9(2): 22-24
© 2023 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 01-01-2023
Accepted: 04-02-2023

कंचन कुमारी
शोधच्छात्रा. एम. फिल्.
संस्कृत विभाग, जम्मू विश्वविद्यालय,
जम्मू और कश्मीर, भारत

Corresponding Author:
कंचन कुमारी
शोधच्छात्रा. एम. फिल्.
संस्कृत विभाग, जम्मू विश्वविद्यालय,
जम्मू और कश्मीर, भारत

अद्वैत वेदान्त की ज्ञानमीमांसाः एक दष्टि

कंचन कुमारी

प्रस्तावना

वैदिक दर्शनों में षड्दर्शन (छः दर्शन) अधिक प्रसिद्ध और प्राचीन है। ये सांख्य, योग, न्याय, वैशेषिक मीमांसा और वेदान्त के नाम से विदित है। इन दर्शनों को आस्तिक दर्शन भी कहते है। इनके प्रवर्त्तक क्रमशः कपिल, पतंजलि, गौतम, कणाद, जैमिनी और बादरायण है। वेदान्त के विभिन्न सम्प्रदायों में जो सबसे अधिक प्रचलित है वे हैं–अद्वैत वेदान्त, विशिष्ट अद्वैत और द्वैत आदि शंकराचार्य, रामानुज और श्री मध्वाचार्य जिनको क्रमशः इन तीनों सम्प्रदायों का प्रवर्त्तक माना जाता हैं।

अद्वैत वेदान्त, वेदान्त दर्शन के अन्तर्गत आता है। यह भारत में उत्पन्न हुई कई विचारधाराओं में से एक है। जिसके पुरस्कर्त्ता शंकराचार्य है। इसे शंकराद्वैत भी कहा जाता है। शंकराचार्य का कहना है कि संसार में ब्रह्मा ही सत्य है, जगत् मिथ्या है, जीव और ब्रह्म अलग नही हैं। जीव केवल अज्ञान के कारण ही ब्रह्म को नही जान पाता, जबकि ब्रह्म तो उसके ही अंदर विद्यमान है। उन्होंने अपने ब्रह्मसूत्र में ''अहं ब्रह्मास्मि'' ऐसा कहकर अद्वैत सिद्धान्त बताया है। अद्धैत सिद्धान्त इस चराचर जगत में भी विराजमान है।

शंकराचार्य ने प्रत्यक्ष, अनुमान, शब्द, उपमान, अर्थापत्ति और अनुपलब्धि को ज्ञान का साधन माना है।[1] किन्तु इन्होंने केवल तीन का ही मुख्य रूप से प्रयोग किया है–प्रत्यक्ष अनुमान और शब्द। शंकराचार्य ने ज्ञान मीमांसा का प्रथम साधन प्रत्यक्ष को माना है। तर्क–संग्रह में प्रत्यक्ष की परिभाषा देते हुए कहा गया है कि प्रत्यक्ष वह ज्ञान है जो इन्द्रियों और वस्तुओं के संयोग से उत्पन्न होता है (इन्द्रियार्थसन्निकर्षजन्यम् ज्ञानं प्रत्यक्षं) ऐसा ज्ञात होता है कि शंकराचार्य इस परिभाषा से पूर्ण रूप से सहमत है। उनका कहना है कि शब्दादि से इन्द्रियों का संयोग होने पर ही प्रत्यक्ष ज्ञान होता है।[2] प्रत्यक्ष की हर एक क्रिया में बाह्य वस्तु विद्यमान रहती है।[3] इससे प्रत्यक्ष ज्ञान स्मृति से अलग हो जाता है। स्मृति में बाह्य वस्तु से इन्द्रियों का वास्तविक सम्बन्ध नहीं होता है।[4] आचार्य शंकर का कहना है कि ब्रह्म का कोई आकार नही है इसलिए उसका प्रत्यक्ष नही हो सकता है।[5] कहने का अभिप्राय यह है कि जिस वस्तु में आकार आदि गुण है उसी का प्रत्यक्ष हो सकता है अन्य का नहीं। उनके अनुसार भिन्न–भिन्न विषयों को अभिव्यक्त करने के लिए ऐसी शक्ति इन्द्रियों में ही होती है,[6] वे प्रत्यक्ष की उपकरण या साधन होती है।[7] संसार की प्रत्यक्ष वस्तुओं का ज्ञान प्राप्त करने के लिए ज्ञानेन्द्रियाँ और मन ही प्रमुख साधन है।[8]

सभी भारतीय दार्शनिक मन को इन्द्रिय मानते है इसमें उनका कोई मतभेद नही है। (डा0 सिन्हा के अनुसार ''न्याय वैशेषिक मन को आन्तरिक इन्द्रिय मानते है, क्योंकि मन के द्वारा ही हमें सुख–दुख का अनुभव होता है। मीमांसक और सांख्यवादी भी मन को आन्तरिक ज्ञानेन्द्रिय के रुप में स्वीकार करते हैं[9]। जैन दार्शनिकों ने और कुछ वेदान्तियों ने मन को इन्द्रिय नही माना है।[10] मन को इन्द्रिय मानने में शंकराचार्य को कोई भी दुविधा नही है,[11] लेकिन उन्होंने भी कहीं–कहीं पर केवल दस इन्द्रियां ही मानी है। ऐसा कहा जाता है कि जब इन्द्रियां अपने–अपने विषयों की ओर अग्रसर होती है,[12] तो मन भी उनकी ओर चला जाता है और मन के द्वारा ही मनुष्य विभिन्न बाह्य वस्तुओं से सम्बन्ध स्थापित करता है।[13] इस प्रकार से ही वस्तु का ज्ञान प्राप्त होता है और मन को बाह्य इन्द्रियों से भिन्न माना जा सकता है।

मन या बाह्य इन्द्रियां अपने आप विषयों को व्यक्त नही करती है। अंततः स्वयं प्रकाश स्वरूप आन्तरिक चेतना ही उनकी अभिव्यक्ति का कारण है। उदाहरणार्थ, अन्तरात्मा के द्वारा ही श्रवणेन्द्रिय से हम सुन सकते है और नेत्रेन्द्रिय से हम देख सकते है। इनके बिना हमारे भीतर कल्पना और इच्छा जैसा कोई भी कार्य सम्पन्न नहीं हो सकता (संकल्पाध्यवसायादि)[14]। दिखाई देने वाली वस्तुओं की तरह मन और सभी इन्द्रियां जड़ है। क्योंकि अपने आप वे कुछ नहीं जान सकती। केवल जीव ही जानने वाला है। आन्तरिक या बाह्य इन्द्रियां उसके उपकरण मात्र है।

वे केवल जीव के उद्देश्य को ही पूर्ण करती है। उनका अपना कोई उद्देश्य नहीं है। वे गृह आदि की भान्ति आघात है। अतः एक ऐसी शक्ति अवश्य होनी चाहिए, जो उनकी तरह केवल आघात न हो और जिसके उद्देश्य की वे पूर्ति करती हो।[15] बाह्य वस्तु के प्रत्यक्ष में चार कारक होते है–स्वयं वस्तु, बाह्य इन्द्रियां, मन और जीव अथवा प्रत्यक्षकर्त्ता।

प्रत्यक्ष सिद्धान्त के विषय में डॉ. राधाकृष्णन का कहना है कि ''इसका वैज्ञानिक पक्ष तो अपरिष्कृत है किन्तु इसकी तत्त्वमीमांसा अन्तर्दृष्टि मूल्यवान है।[16] निःसंदेह यह अस्वीकार नही किया जा सकता कि प्रत्यक्ष का यह सिद्धान्त प्रत्यक्ष होने की प्रक्रिया का पूर्ण रूप से वर्णन नहीं कर सकता है। वेदान्ती केवल इतना कहते है कि इन्द्रियों को प्रेरित केवल वस्तु करती है और वस्तु की ओर अन्तःकरण आँख के मार्ग से जाता है। वे यह नही बताते कि प्रकाश की किरणे चक्षु प्रत्यक्ष में आँख में कैसे प्रविष्ट होती है और उनमें क्या परिवर्तन होते है। मुख्य शक्ति को उनके द्वारा कैसे जागृत किया जाता है और वह वस्तु की ओर किस तरह प्रवाहित होती है।[17] आधुनिक मनोवैज्ञानिक द्वारा प्रतिपादित प्रत्यक्ष सिद्धान्त के विषय में भी यही समस्या है। केवल चक्षु प्रत्यक्ष पर ही केंद्रित रहकर हम कह सकते है कि इस विषय में आधुनिक मनोवैज्ञानिकों का विवरण भी उतना ही अपर्याप्त है जितना वेदान्तियों का। वस्तु का प्रत्यक्ष न दृष्टि क्षेत्र में होता है और न दुष्टि पटल पर क्योंकि प्रत्यक्ष की वस्तु बाहर होती है। इसमें कोई संदेह नही है कि प्रत्यक्ष एक मानसिक कार्य है । वह केवल शारीरिक प्रक्रिया नही है। अर्थ ग्राह्यता और विभेदीकरण जैसी मानसिक क्रियाओं के अतिरिक्त इसमें प्रक्षेपण की क्रिया भी समीपस्थ रहती है। अतः प्रत्यक्ष का आधुनिक मनोवैज्ञानिक विवरण भी अधूरा ही है। यह बाहर स्थित वस्तु के वास्तविक प्रत्यक्ष और तथाकथित तंत्रीय शक्ति प्रवाहित होने के कारण मस्तिष्क में होने वाले परिवर्तनों के बीच सम्बन्ध नहीं स्थापित कर पाता है। इसके अतिरिक्त हम जानते है कि वस्तु की प्रतिमा दृष्टि पटल पर उल्टी बनती है लेकिन फिर भी हम वस्तु को सीधा ही देखते है। इससे सिद्ध होता है कि प्रत्यक्ष की शारीरिक व्याख्या अधूरी है।

शंकराचार्य ने प्रत्यक्ष सिद्धान्त की जो व्याख्या और विस्तृत विवेचना वेदान्त–परिभाषा के लेखक ने दी है वह आधुनिक वैज्ञानिकों की व्याख्या की पूरक है। क्योंकि दोनो का यही मानना है कि इन्द्रियों और विषयों के संसर्ग से ही प्रत्यक्ष होता है। इसलिए वे एक दूसरे के पूरक है न की विरोधी।

अनुमान को शंकराचार्य ज्ञान का दूसरा साधन मानते है। अनुमान का शाब्दिक अर्थ है– 'बाद में जानन'। किसी ज्ञान के बाद ही अनुमान ज्ञान होता है। डॉ. बी0 एन0 सील का कहना है कि ''अनुमान प्रत्यक्ष की अपेक्षा किसी चिन्ह या माध्यम द्वारा किसी वस्तु के कुछ लक्षण निश्चित करने की प्रक्रिया है।[18] नैयायिकों के अनुसार परार्थानुमान में प्रतिज्ञा, हेतु, उदाहरण, उपनय और निगम ये पाँच प्रतिज्ञप्तियाँ होती है। इन्हें अनुमान के पांच अवयव भी कहा जाता है। शंकराचार्य भी नैयायिकों की भान्ति इन पांच अवयवों की स्वीकार करते है। कभी–कभी वे इसका प्रयोग करने में इन पांच अवयवों को स्पष्ट नहीं करते है। लेकिन इसका मतलब यह नही है कि ये पांच अवयव उनके लिए आवश्यक ही नही है।

अनुमान मूल रूप से प्रत्यक्ष पर आधारित होता है। इसका माध्यम लिंग या हेतु पद कहलाता है और इसमें हम ज्ञात से अज्ञात की ओर जाते है। शंकराचार्य के अनुमान की इन सभी विशेषताओं को माना है।[19] यद्यपि इन्होंने प्रत्यक्ष और अनुमान के मनोविज्ञान का पर्याप्त व्यवस्थित वर्णन नही किया है, किन्तु जो कुछ भी हमने देखा है, उसके आधार पर हम कह सकते है कि डॉ. राधाकृष्णन् का यह कहना उचित नही है कि 'हम उनके विचारों का विवरण नहीं दे सकते।''[20] प्रत्यक्ष की तरह अनुमान के विषय में भी शंकराचार्य के विचार वही है जो वेदान्त परिभाषा में प्रतिपादित किये गये है। कुछ बातों में मतभेद हो सकता है किन्तु उनके सामान्य स्वरुप के विषय में कोई मतभेद नही है।

जहां तक अनुमान के मूल्य और उपयोगिता का प्रश्न है तो यह निश्चय पूर्वक कहा जा सकता है कि शंकर ने इसे स्वीकार किया है। अनुमान को उन्होंने बार–बार वैध ज्ञान का साधन माना है। उद0 अपने भाष्य भगवद्गीता में उन्होंने स्पष्ट रुप से कहा है कि ''बड़े साहस की बात है, कि शब्द और अनुमान प्रमाण उपलब्ध होने पर भी ब्रह्म ज्ञान नहीं होता।[21] फिर भी, वे अनुमान की सीमा को जानते हुए उसके पार जाना उचित नही समझते। इसलिए वह कहते है कि इन्द्रियानुभवातीत विषयों में अनुमान सदैव निर्णायक नही है। वहां इसे शास्त्र प्रमाण से निम्न ही मानना चाहिए। उन्होंने उचित ही कहा है कि अनुमान ज्ञान का साधन वहां पर नहीं रहता जहां पर वह प्रत्यक्ष अनुभव का व्याघाती हो।[22]

शंकराचार्य ज्ञान का तीसरा साधन शब्द को मानते है। उनके जीवधारियों की भान्ति मनुष्य केवल अपने अनुभवों से ही नहीं सीखता है, बल्कि दूसरे के अनुभव से भी लाभ उठाता है। यद्यपि हम केवल अपने ही प्रत्यक्षात्मक और अनुमानात्मक प्रयत्नों से सीखते तो हमें बहुत ही अल्प ज्ञान होता। अन्य ज्ञान के अतिरिक्त हमारे ऐतिहासिक और भौगोलिक ज्ञान का एक बहुत बड़ा अंश हमारे व्यक्तिगत प्रत्यक्ष की उत्पत्ति नही है और अनुमान के द्वारा भी उसे हमने नही जाना है। हमें पुरानी और आज की अदृष्ट बातों के विषय में अधिकतर दूसरों के साक्ष्य पर ही भरोसा करना पड़ता है। ये साक्ष्य आपस में विरोधी भी हो सकते है और हमें उनकी सत्यता के विषय में आशंका हो सकती है और हम अपने अनुभव का प्रयोग उनकी प्रामाणिकता सिद्ध करने के लिए नहीं कर सकते है। प्रत्यक्ष करने के लिए वस्तु उसके योग्य होनी चाहिए, और इसके साथ ही वह हमारी इन्द्रियों के समक्ष भी उपस्थित हो। वास्तव में हमें यह स्वीकार करना होगा कि शंकराचार्य ने अपना दार्शनिक जीवन वैदिक साहित्य में विश्वास करके ही आरम्भ किया है। उनकी सहायता से उन्होंने ब्रह्म का भ्रमरहित ज्ञान प्राप्त किया। इसके अनुसार शंकराचार्य ने साहसपूर्वक यह घोषणा की है कि परम सत् या इन्द्रियानुभव–अतीत ज्ञान इन्द्रिय प्रत्यक्ष या ज्ञान के दूसरे साधनों द्वारा न होकर केवल शब्द द्वारा ही होता है।[23] वे कहते है कि परम्परागत वैदिक गुरुओं की शिक्षाओं से ही ब्रह्म को जाना जा सकता है।[24] यह भी केवल शब्द के द्वारा ही जाना जा सकता है कि विश्व की उत्पत्ति का कारण भी ब्रह्म ही है।[25] जिन विषयों का प्रतिपादन वेदों में हुआ है उन पर वेदों का वैसे ही स्वतन्त्र और साक्षात अधिकार है जिस प्रकार सूर्य का प्रकाश हमारे रंग और रुप के ज्ञान का साक्षात् साधन है।[26] यह कहना ठीक नही है कि कुछ लोग इन्द्रियातीत विषयों का प्रत्यक्ष श्रुतियों की सहायता के बिना भी कर लेते है, क्योंकि इस प्रकार के प्रत्यक्ष ज्ञान का कोई निमित्त कारण नही है।[27] उपनिषदों के वाक्य के द्वारा ही परम सत का ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है।[28] केवल श्रुतियों के द्वारा ही ब्रह्म को जाना जाता है।[29] शब्द द्वारा ही इन्द्रियातीत ज्ञान प्राप्त होता है। परम ज्ञान का साधन श्रुतियाँ ही है।[30] शंकराचार्य की रचनाओं में बहुत से कथन ऐसे भी है जिनको यहाँ प्रकट करना सम्भव नही है और न ही आवश्यक है।

अतः स्पष्ट है कि केवल इन्द्रियातीत विषयों के ज्ञान के लिए ही श्रुति प्रमाण की आवश्यकता मानी गई है। शंकराचार्य कभी भी श्रुतियों का उद्धरण इन्द्रियानुभाविक या संसारिक विषयों के साक्ष्य के लिए नहीं देते हैं। इसके अतिरिक्त ब्रह्म या सर्वव्यापी आत्मा के ज्ञान के विषय में भी शंकर श्रुतियों की शिक्षाओं से सन्तुष्ट नहीं है। उनकी दृष्टि में केवल श्रुतियों द्वारा प्राप्त परोक्ष ज्ञान पर्याप्त नही है, वे अपनी अपरोक्षानुभूति से भी उसे प्रमाणित करते है। वह दूसरों को वही रास्ता दिखाते है जो उन्होंने स्वयं आत्मा–साक्षात्कार द्वारा प्राप्त किया हो। उनके अनुसार स्वयं साक्षात् अनुभव के द्वारा ब्रह्मज्ञान प्राप्त करके ही व्यक्ति मुक्त हो सकता है।[31]

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि शंकराचार्य ने छः प्रमाणों में से प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्द को ही विशेष महत्व दिया है। इसमें से भी उन्होंने शब्द प्रमाण को अधिक श्रेष्ठ माना है।

संदर्भ सूची

1. शां० भा० ब्रह्मसूत्र, 2.1.2 (प्रत्यक्षायमुनुमानं च शास्त्रं च), शां० भां० मुण्डक, 1.2.12, (प्रत्यक्षानुमानोपमानागमैः), शां० भां० गीता, 18.68, शां० भां० बृहदारण्यक, 3.3.1, (प्रत्यक्षं..... अनुमानं..... अर्थापत्तिः), शां० भां० ब्रह्मसूत्र, 2.1.18
2. शां० भां० गीता, 2.14
3. शां० भां० ब्रह्मसूत्र, 2.2.8
4. शां० भां० ब्रह्मसूत्र, 2.2.29
5. शां० भां० 2.1.2
6. शां० भां० गीता 1.2
7. शां० भां० गीता, 2.14
8. शां० भां० केन 1.3
9. इण्डियन साइकलाजी, परसेप्सन पृ० 16
10. इण्डियन साइकलाजी, परसेप्सन पृ० 17
11. शां० भां० ब्रह्मसूत्र 2.4.17
12. शां० भां० ब्रह्मसूत्र 2–67
13. शां० भां० ब्रह्मसूत्र 1.1.9
14. शां० भां० केन 1.2
15. शां० भां० केन 1.2
16. इण्डियन फिलासफी, खण्ड 2 पृ० 492–493
17. फिलासफीकल क्वार्टरली खण्ड 16, सं० 3 अक्टूबर 194० पृ० 187–188
18. दि पाजिटिव साइंस आफ दि ऐनसियन्ट इन्दूज, पृ० 25०
19. शां० भां० बृहदारण्यक, 1.2.1 (प्रत्यक्ष पूर्वकत्वाददुमानस्य) शां० भां० ब्रह्मसूत्र 2.1.6 (लिङाग्द्य भावाच्च) 2.1.4 (दृष्टि साम्येनादृष्टमर्थ)
20. इण्डियन फिलासफी, खण्ड 2,
21. शां० भां० गीता 2.21
22. शां० भां० बृहदारण्यक, 4.3.6 (प्रत्यक्ष विरोधं अनुमानस्याप्रमाणयात्) 2.1.2० (न चानुामनं .....लभते)
23. शां० भां० केन, 1.4
24. शां० भां० केन. 1.4
25. शां० भां० ब्रह्मसूत्र, 1.1.3
26. शां० भां० ब्रह्मसूत्र, 2.1.1
27. शां० भां० ब्रह्मसूत्र, 2.11
28. शां० भां० 2.1.27
29. शां० भां० 1.9.4 (ब्रह्म शास्त्र प्रमाणकम्)
30. शां० भां० गीता, 2.18 (शास्त्रं.....अन्त्यं प्रमाणम्)
31. शां० भां० ब्रह्मसूत्र, 2.1.4